

□□□□□□

जनसत्ता 14 मई, 2014 : लोकसभा के चुनाव हो गये देशी और विदेशी स्रोतों से मलि बेइंतहा सरमाया की मदद से,

मीडिया के बड़े हस्सिसे के खरीद कर, तमाम कस्मि के ऊलजलूल झूठ बोल कर, वहीं वकिस क झांसा, वहीं मुसलमानों के भरोसा तो वहीं डर दिखा कर, नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा और उसके सहयोगी दलों के गठबंधन (राजग) ने सबसे अधिक सीटें जीत लेने का शोर मचाया हुआ है। कफ़े शोर मचा है कि लड़ाई वकिस बनाम भ्रष्टाचार की है। जल्दी ही स्पष्ट हो जायेगा कि न तो भ्रष्टाचार कम होने वाला है और न ही सही मायने में कोई वकिस होने वाला है। जो वकिस के दावेदार हैं उन्होंने दस हजार करोड़ जनिके फुंफुं है, वे कैन-सा दूध के धुले हैं, या यों कहें कि वे दूध ही से नहाते हैं; उन्हें तो मय सूद अपनी पूंजी वापस चाहिए। उन्हें अपने धंधों में अधिक से अधिक मुनाफ़ा चाहिए, इसलिये शेर बाजार भी चुनाव परिणामों की ओर ताक लगा बैठा है। वकिस के हल्ले के साथ सांप्रदायिक और पोंगापंथी ताकतें एक कदम आगे बढ़ आई हैं।

क्या आम लोग सचमुच इतने भोले हैं कि वे एक कभे चाल में आकर इस तरह अपना ही सत्यानाश कर बैठें? क्या सूचना क्रांतिके तमाम पहलुओं के बावजूद देश की स्त्रियों के पता नहीं कि उनके प्रति संघ परिवार का नजरिया क्या है? गौरतलब है कि अपूरव सरमाया लगाने के बावजूद संघ परिवार को आज तक दक्षिणी प्रांतों में कोई खास सफलता नहीं मिली है। शक्ति, गरीबी-उन्मूलन और मानव वकिस के तमाम आंकड़ों में हिंदी क्षेत्र दक्षिणी प्रांतों से बहुत पीछे है। मीडिया में शोर-शराबे का जो प्रभाव हिंदी प्रदेशों में दिखाता है, उतना दक्षिण में नहीं दिखाता। मीडिया पर लिखे लोगों तक के मानसिक गुलाम बना देता है। मीडिया और सूचना उद्योग से जुड़ी कम्पनियों अरबों रुपय संज्ञान के नयित्रण पर शोध के लिए खर्च करती हैं। प्रबंधन में प्रशिक्षण का बड़ा हस्सिसा इसी दिशा का है। कम पर लिखे लोगों की क्या बसात कि ऐसे तूफन के सामने वे टिकें।

इसमें अचंभित होने की कोई बात नहीं कि उत्तर भारत के बड़े हस्सिसे में संघ परिवार का प्रभाव बढ़ा है। गुजरात और महाराष्ट्र में उनकी जड़ें पहले से ही गहरी हैं और वहीं हस्सिसा तो वहीं राजनीतिक दांवपेच से वरिध की जमीन के उखाड़े ने में वे सफल रहे हैं। पर बात सरिफ इतनी नहीं है। वकिस के झांसे और सांप्रदायिकता के हो-हल्ले का प्रभाव गरीब अनपढ़ जनता पर ही नहीं; कहने के महान संस्कृति वाले हमारे देश के संपन्न और मध्य-वर्गों के कई लोग वास्तव में कूर और संवेदनाहीन होकर बहुसंख्यक लोगों के खिलाफ षड्यंत्र में शामिल हैं। उन्होंने तय कर लिया कि अब इन गरीब-गुरबा को खत्म करो; इनसे पानी, हवा, मट्टी सब छीन लो।

शोर मचा कि वाम दल तो ऐसे दलों के साथ हाथ मिला रहे हैं जिनमें भ्रष्ट नेता भरे हुए हैं। बूजुआ लोकतंत्र और संसदीय चुनावी खेल की मजबूरी में गठबंधन की राजनीति करने पर भी वाम के लता मिलती है कि वाम तो अब खत्म हो गया। जैसे कि भारतीय वाम के नेतृत्व में पछिले सौ वर्षों का जमीनी आंदोलन का इतिहास, जनांदोलनों का इतिहास, सब कुछ क्मोल-क्ल्पना थे। सच यह है कि आज भी सत्ता के संसद तक और जमीन, जंगल की नैतिकता की वाम के रूप में ही क्मात्र उम्मीद बची रह गई है।

ऐसे में लोकतांत्रिकताकों के लॉ सबक क्या है? कइयों क पहला सवाल यह होगा क कैन-से लोकतांत्रिक? मै अपने जैसे उन लोगों की तरफ से लिख रहा हूं, जिन्हें अपनी सारी कमजोरियों के बावजूद बेहतर भविष्य के सपने देखने की बीमारी है। लोकतांत्रिक परंपरा क क सीधा नतीजा वैचारिक विविधता है। हमें आपसी मतों की विविधता क सम्मान करना सीखना होगा। दूसरों के चोट पहुंचा। बनिा, अपनी बात कह पाने के तरीके ईजाद करने होंगे।

अपनी ऊर्जा क दूसरे के साथ बहस और वरिध में नहीं, उनके खिलाफ लड़ने में लगानी होगी जो लोकतंत्र क नाश चाहते हैं। हमें अपने छोटे-छोटे समझौतों के नजरअंदाज करते हुए क क साझी लड़ाई क मंच तैयार करना होगा। हमारी पहली प्रतिबद्धता उन सब जुझारू साथियों के प्रति है जो जनांदोलनों से लेकर पूंजीवाद के सामने घुटने टेक चुके राज्य के खिलाफ तरह-तरह के जनयुद्ध में जुटे हैं।

ब। सामाजिक-राजनीतिक संघर्षों में कैन-सा सूक्ष्म विचार सफल होता है और कैन विफल, यह पहले से तय नहीं होता। क क मंच पर आने की केशिशि होती रही है; ऐसी ब। की केशिशि हाल में लेखक संगठनों की साझा सभाओं और मंचों से आ। बयानों में देखिती है।

यह वडिंबना है क मुक्तकामी परंपरा के विचार, जो सारी मानवता से जु। है, उसकी समझ पुख्ता करने के लॉ। हम ऐसी भाषा में विमर्श करते हैं जो वंचितों की भाषा नहीं है, और अधिकतर ऐसे मुहावरों में तरकरखते हैं जो हमारी जमीन से नहीं आ।।

दूसरी तरफ संकीर्ण और सांप्रदायिक राष्ट्रवाद क विचार, जो यूरोप की विशेष परिस्थितियों में जनमा और जिसे यूरोप के लोग कफे हद तक खारजि कर चुके हैं, उसक प्रचार-प्रसार करने के लॉ। संघ परिवार पूरी तरह देशी भाषाओं और देशी मुहावरों क इस्तेमाल करता है। यानी फसीवाद के उभार और लोकतंत्र की विफलता क क भाषाई पक्ष भी है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाह।।

हमें अपने ब। सपने के साकर करने के लॉ। मौजूदा सभी जनपक्षधर विचारों क इस्तेमाल करना होगा। मार्क्स स्वयं अपने जीवनकाल में वैचारिक सीमाओं से नक्लि कर लगातार न। सवाल-जवाब से जूझते रहे। बीसवीं सदी के प्रबुद्ध चिंतक और नेता आंबेडकर और शांतपूरण वरिध की रणनीति के पुरोधा गांधी, जिनके बदकस्मिती से तकरीबन क क उद्योग क नाम बना दिया गया है, और मानवेंद्र नाथ रॉय और लोहिया जैसे चिंतकों से हमें लगातार प्रेरणा लेनी होगी। हमें यह देखना होगा क सांप्रदायिकता के खिलाफ नोआखाली और केलकता में गांधी कैसे नडिर होकर ल।। अंततः सांप्रदायिकता से ल। ते हु। उनकी जान गई। उनकी आधुनिकता की आलोचना मुख्यतः पूंजीवाद की आलोचना है।

मतलब यह नहीं क हम इन सभी विचारकों के अंधभक्त बन जा।, पर हम ऐसे हर प्रतिबद्ध विचारक से सीखें, जसिने भी जनता की मुक्ता के संघर्ष की सफलता के लॉ। कम किया है। क क ऐसा ब।। मंच हो, जसिमें गांधीवादियों और लोहियावादियों से लेकर कम्युनिस्ट तक इकट्ठा हो सकें। अस्सी के दशक के आखिरी सालों में ऐसा ही क क मंच बनाने नक्लिे नागभूषण पटनायक हर जगह जाकर कहते थे क हम इस बात के मान लें क हममें से हर कोई देशभक्त है। जाहरि है, देशभक्ति से उनक मतलब संघी कस्मि की संकीर्णता से क्तिई नहीं था।

दूसरे मुलकों से मसाल दूढ़ें तो वेनेजु। ला के ऊगो चावेज कोई ब। विचारक नहीं थे, पर लोगों के अपने साथ लेने में न केवल वे अपने देश में कमयाब हु।, बल्क समूचे लातिन अमेरिा और दुनिया के और दीगर देशों में भी मुक्तकामी जनता के लॉ। प्रेरणा के स्रोत बने। यही बात क्यूबा के बारे में भी कुछ हद तक कही जा सकती है- कस्त्रो क नाम कम्युनिस्ट इतिहास में विचारक नहीं, बल्क क कुशल प्रशासक और रणनीतजिज की तरह ही जाना जाता है। के

गेवारा के लोग उनकी रोमांटिक क्रांतिकारी के छवि के लीं ही जानते हैं।

इन सबके विपरीत जहां भी वैचारिक शुद्धता पर जोर ज्यादा रहा है, वहां लोगों के साथ नेतृत्व का संबंध टूटा है और वहां साम्राज्यवादी ताकतों के घुसपैठ करने का मौक़ा मिला है। ग्रेनाडा और अफ़ग़ानिस्तान इसके अच्छे उदाहरण हैं। इसके बरक़्स वेनेजुएला में सैद्धांतिक विचारकों ने अपनी सीमाओं के और चावेज के लोकप्रियता के पहचानते हुए उन्हें सत्ता की बागडोर संभालने दी। उनकी मौत के बाद जैसे ही कश्मिरे के किसी नेता केन होने से वहां जनवादी ताकतों में विभाजन हो रहा है और इसका फ़ायदा अमेरिकी साम्राज्यवाद के मलि रहा है।

प्रगतशील आंदोलन ने आंबेडकर के क्रांतिकारी नेता मान कर अपनी गलती सुधार ली है। सवाल मुहावरे, लहजे और आत्मीयता का भी है। क्या वाम नेतृत्व समय के साथ बदलते सही मुहावरे हैं? ने में विप्लव हुआ है? जो लोग मीडिया के झंसे में आ गए हैं वे ऐसा ही कहेंगे। सच यह है कि देश में चल रहे तक़ीबन सभी जनांदोलन किसी न किसी तरह के वाम प्रभाव में हैं। समस्या यह है कि वाम के पास चुनावी तंत्र में बेहद सरमाया का इस्तेमाल और मीडिया के पक्षपात से टक्कर लेने की क्षमता नहीं है। दूसरा खेल गठबंधनों का है। ऐसे दलों के साथ गठबंधन करते हुए जनिकी छवि बगि चुकी है, जवाबदेह तो होना पड़ेगा। जहां जतिना मौक़ा मलित्ता है, बुनियादी मुद्दों पर वापस जाना होगा और भावनात्मक पक्षों का ध्यान रखते हुए सांगठनिक प्रक्रियाओं के मजबूत कर जनचेतना के लीं संघर्ष करना होगा।

अक्सर साथ-साथ काम करते हुए विभिन्न संगठन इस वजह से अलग हो जाते हैं कि उन्हें कदूसरे पर शक़रहता है कि वे अपना प्रभाव बचाएँ। दूसरे के हाशिए पर धकेलना चाहते हैं। इस प्रवृत्ति का कही हल है कि हम इससे होते नुक़सान के समझें। आखिर में लोग अपने आप सही रास्ता ढूंढेंगे। शक़शुबहे में फ़ंस कर आंदोलन के बखिरने न दें। अपने बने उद्देश्य के सामने रखें। छोटे-छोटे गुटों में प्रभाव बचाएँ। का सामयिक संतोष तो मलि सकता है, पर लंबी अवधि में यह खुद के भी और जनता के भी नुक़सान पहुंचाता है। इसलिये बदलती परिस्थिति में पहली शर्त यह होनी चाहिए कि किसी भी तरह से साझी लीं ई के बखिरने न देंगे। अच्छे प्रार्थियों के साथ गठबंधन हर चुनाव क्षेत्र में हो सकता है, पर जब राज्य या राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन करना हो तो साफ़तौर पर यह बताना जरूरी है कि यह केवल करणनीति है और गठबंधन में शामिल दलों की हर नीति के हमारा समर्थन नहीं है।

अब यह साफ़ हो गया है कि जनपक्षधर बहुत सारी ऊर्जा आपस की लीं ई में ही खर्च हो जाती है और संघ परिवार के इसका पूरा फ़ायदा मलि। यह उसी तरह है जैसे 1930 के दशक में जर्मनी में केपीडी और सीपीडी जैसी पार्टियां इसी बहस में उलझी हुई थीं कि जर्मन समाज का सही वर्गीय चरित्र क्या है और हटिलर ने सत्ता हथिया ली। जनपक्षीय ताकतों में अब भी अगर बखिराव नहीं रुक और हम आपसी बहस में ही सारी ऊर्जा खत्म करते रहे तो यह आम लोगों के साथ विश्वासघात होगा। सामाजिक बदलाव के लीं जो कुरबानियां आंदोलनों के साथ जुड़ी कर्यकर्ताओं ने दी हैं, वे व्यर्थ न जायें। यह देखना है। सारी दुनिया में पूंजीवाद का संकट गहरा रहा है। देखना है कि हम हाल के इतिहास से सही सबक ले पाते हैं या नहीं।

फ़ेसबुक पेज के लाइक करने के लीं क्लिक करें- <https://www.facebook.com/Jansatta>

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- <https://twitter.com/Jansatta>